DEV SANSKRITI: Interdisciplinary International Journal (2016), 8, 47-50

वर्तमान शिक्षा समस्याओं के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन

प्रिज़्मा झरे

सारांश

भारतीय दृष्टिकोण में शिक्षा आन्तरिक प्रतिभा, ज्ञान एवं मूल्यों के वर्द्धन करने का श्रेष्ठ माध्यम है। यहाँ शिक्षा ही व्यक्ति एवं समाज को ऊँचा उठाने वाले जीवन मूल्यों को अर्थ प्रदान करती है। आदिकाल से भारतीय शिक्षा में मूल्यों–आदर्शों के रूप में केन्द्रीय तत्त्व अध्यात्म रहा है। यहाँ की शिक्षा पद्धतियों में आध्यात्मिक प्रवृत्तियाँ सदैव विद्यमान रही हैं और शिक्षा में आध्यात्मिक जीवन मूल्यों को सर्वोपरि महत्त्व दिया गया है। स्वामी विवेकानन्द आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में भी ऐसे ही आध्यात्मिक जीवन मूल्यों का समर्थन करते हैं। इसके विपरीत वर्तमान शिक्षा पद्धति में जो ज्ञान दिया जाता है, वह प्रधानतया बौद्धिक धरातल तक ही सीमित है। यह पद्धति जीवन को सर्वांगपूर्ण विकास की ओर उन्मुख बनाने वाली शिक्षा की आवश्यकता को पूरा करने में असमर्थ दिखाई देती है। आज मूल्यहीनता, अनुशासनहीनता, बेरोजगारी, एकांगीपन और व्यावसायिकता की प्रवृत्ति भारतीय शिक्षा के लिए गम्भीर समस्याएँ बनकर सामने खड़ी है। इन समस्याओं का कारण विद्यार्थियों में जिज्ञासा की कमी अथवा अनुशासनहीनता ही कारक नहीं है अपितु शिक्षा का निम्न स्तर, अनावश्यक बोझ बढ़ाने वाले पाठ्यक्रम, दोषपूर्ण पाठ्यक्रम तथा समुचित निर्देशन व मार्गदर्शन का अभाव भी बड़े कारण है, जिसके कारण वर्तमान शिक्षा में अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। वर्तमान की शिक्षा समस्याओं के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन से सार्थक समाधान निकल कर सामने आते हैं। उनके चिन्तन में शिक्षा के सनातन मूल्य एवं व्यावहारिक आदर्श मौजूद है। इस तरह स्वामी जी के शिक्षा दर्शन एवं शिक्षण प्रक्रियाओं में शिक्षा जगत् की वर्तमान समस्याओं का समग्र समाधान प्राप्त होता है।

कूट शब्द : शिक्षा दर्शन, शिक्षा मूल्य, शिक्षा समस्याएँ एवं स्वामी विवेकानंद

शिक्षा का मूल उद्देश्य मानव जीवन को बाह्य और आन्तरिक रूप से सुसंस्कृत एवं विकसित बनाना है। यह जीवन के समुचित और संतुलित विकास की प्रक्रिया है। पाण्डेय के शब्दों में, 'जीवन की उदात्तता, उच्चता, सौन्दर्य एवं उत्कृष्टता शिक्षा द्वारा सम्भव है (पाण्डे, 2008, पृ. 11)। भारतीय जीवन में शिक्षा का स्थान जीवन मूल्यों की संवाहिका शक्ति के रूप में है। यहाँ शिक्षा के स्वरूप में शैक्षिक मूल्य के साथ ही नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का समावेश है। वस्तुतः भारत में शिक्षा अन्तर्विवेक और शक्ति का स्रोत मानी जाती है जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों के सन्तुलित विकास से हमारे कर्म, आचरण में परिवर्तन कर श्रेष्ठ बनाती है (अल्तेकर, 2014, पृ. 6)। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से शिक्षा व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित कर परिष्कृत तथा पूर्ण बनाती है। शिक्षा की इस पूर्णतामय भावना को ही पश्चिमी चिन्तन में शिक्षा के नैतिक और व्यावहारिक मानदण्डों के रूप में तथा भारतीय चिंतन में आत्मिक उन्नति के आध्यात्मिक मूल्यों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। चूँकि भारतीय शास्त्रों वेद, उपनिषद् आदि में मनुष्य की मूल प्रकृति को आध्यात्मिक माना गया है तथा इसी आधार पर कहा गया है कि मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है (तोमर, 2013, पृ. 2013)।

आधुनिक शिक्षा में मनुष्य की इस आत्मिक एवं आध्यात्मिक प्रकृति की अव्यक्त उपेक्षा हुई है। शिक्षा के क्षेत्र में पनपी संकीर्णता और व्यावसायिकता को स्पष्ट देखा जा सकता है। फलस्वरूप वर्तमान में शिक्षा जगत् अनेक तरह की ऐसी समस्याओं से घिर गया है, जो मानवीय प्रकृति को विकसित बनाने में बाधक है। ऐसे में शिक्षा एवं शिक्षण पद्धति अपनी दिशा से भटकती नजर आती है जहाँ उसे पुनः शैक्षिक मूल्यों एवं आदर्शों के अनुरूप मार्गदर्शन की आवश्यकता है। स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचारों में इतनी व्यापकता और गहनता है कि उससे वर्तमान शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का समुचित समाधान प्राप्त किया जा सकता है तथा शिक्षा क्षेत्र को सही दिशा व उद्देश्य की ओर उन्मुख बनाया जा सके। शिक्षा का मूल उद्देश्य मनुष्य को उसकी बाहरी और आन्तरिक आवश्यकताओं का ज्ञान कराकर उनको पूरा करने की कुशलता प्रदान करना है। शिक्षा जीवन की भौतिक जरूरतें जैसे व्यवसाय, नौकरी, सुरक्षा आदि की पूर्ति के साथ ही बौद्धिक, नैतिक एवं आत्मिक मूल्यों की पहचान एवं इनके अभिवर्द्धन की कला प्रदान करती है, मनुष्य के सर्वांगपूर्ण विकास की राह दिखाती है। स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा सम्बन्धी चिन्तन ऐसी ही समग्र एवं सर्वांगपूर्ण शिक्षा का प्रतिपादन करता है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली को उनके चिन्तन की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि आज की शिक्षा को दुभाग्यपूर्ण विसंगतियों ने एकांगी बना दिया है। पण्ड्या के शब्दों में आज शिक्षा नैतिकता के अभाव और मूल्यहीनता के साये में आगे बढ़ रही है। इसमें जीवन, राष्ट्र व संस्कृति को गौरवान्वित कर सकने वाले उच्च आदर्शों एवं मूल्यों के संरक्षण एवं संवर्द्धन की प्रक्रिया समाप्त प्रायः हो चुकी है (पण्ड्या, 2004,

पृ. 15)। एक ओर आज के शैक्षणिक परिवेश में शिक्षा की दिशा जीविकोपार्जन एवं व्यवसाय प्राप्त करने की ओर अग्रसर है, तो वहीं दूसरी ओर शिक्षा अब व्यक्तित्व को गढ़ने की प्रक्रिया कम और व्यवसाय का साधन ज्यादा बनती जा रही है। शिक्षा के इस भटकाव ने हमारी संस्कृति और जीवन मूल्यों पर सीधा आघात किया है। शिक्षा के इस भटकाव से उत्पन्न समस्याओं को सूक्ष्मता से परखकर उनका निराकरण करना समय की मांग है। स्वामी विवेकानन्द का चिन्तन वर्तमान शिक्षा समस्याओं के निराकरण हेतु समर्थ मागदर्शन और नये शिक्षा मूल्यों की पुर्नस्थापना हेतु आधुनिक शिक्षा का मार्ग प्रशस्त करने में सक्षम दिखाई देता है। इस शोध पत्र में वर्तमान की कुछ प्रमुख शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं को रेखांकित करते हुये स्वामी विवेकानन्द के विचारों के माध्यम से उनका समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। वर्तमान शिक्षा समस्याओं को चार भागों में विभाजित किया गया है, यथा 1. विद्यार्थी में अनुशासनहीनता एवं मूल्यहीनता की प्रवृत्ति, 2. शिक्षा का निम्न स्तर (आज की शिक्षा केवल जानकारी देने अथवा व्यावसायिक कुशलता प्रदान करने तक ही सीमित हैं, इसमें राष्ट्र, समाज व जीवन मूल्यों के प्रति कर्त्तव्यबोध उत्पन्न करने की क्षमता का अभाव है), 3. दोषपूर्ण पाठ्यक्रम एवं परीक्षा प्रणाली और 4. निर्देशन व परामर्श का अभाव।

विश्वविद्यालयों का मुख्य लक्ष्य विश्व के और स्वयं के ज्ञान को गहनतम कर समाज में विकीर्णित करना तथा विचारशीलों के माध्यम से जीवन की समस्याओं के समाधानों की खोज करना है। यह गूढ़ विचारों और आदर्शवाद का आश्रय स्थल है जहाँ सत्य और उत्कर्ष के विविध स्वरूपों की साहस व निर्भयता के साथ अभिव्यक्ति होती है। उच्चशिक्षा राष्ट्र का अंतःकरण है तथा राष्ट्रीय जीवन एवं समाज के अलोचनात्मक एवं पक्षपातरहित मूल्यांकन का स्थल है। सर्वाधिक बुद्धिजीवी विश्वविद्यालयों में ही पाये जाते हैं और वहाँ से प्रशिक्षण भी प्राप्त करते हैं। लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति एक स्वतंत्र व विवेकशील जीव है। विश्वविद्यालय का उद्देश्य है कि उसका इस प्रकार मार्गदर्शन हो कि वह अपनी सादृश्य एवं सुप्त क्षमताओं को पहचान कर उनका विकास कर सके।

उच्च शिक्षा के संबंध में एक विशेष बात यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उसका संख्यात्मक विकास अत्यंत त्वरित गति से हुआ है। साथ ही दूसरी विशेष बात यह है कि उसका गुणात्मक विकास आदि से अंत तक अनियोजित रहा है। परिणामतः शिक्षा का स्तर गिर गया है, छात्रों में ज्ञानार्जन की अभिलाषा ने संकीर्ण स्वरूप धारण कर लिया है और यह शिक्षा देश की वर्तमान व भावी आवश्यकताओं को पूर्ण करने में प्रायः असमर्थ हो गई है। कोठारी कमीशन ने लिखा है– ''भारत में सामान्य भावना यह है कि उच्च शिक्षा की स्थिति असंतोषजनक एवं भयप्रद भी है'' (पण्ड्या, 2004, पृ. 15)। यह स्थिति स्वयं में एक विकट समस्या है एवं यह अनेकानेक अन्य समस्याओं का कारण भी है। ऐसे में समुचित समाधान की अत्यंत आवश्यकता है। इसके निवारण हेतु समाधान के वे सूत्र चाहिए जो उच्चस्तरीय, उत्कृष्ट साधनों के माध्यम से इसे प्राप्य बना दें। स्वामी विवेकानंद का चिंतन एवं शिक्षा दर्शन इस क्षेत्र में अपनी महत्ती भूमिका निभा सकता है।

स्वामीजी के मत में शिक्षा एक ऐसी आधारशिला थी जिसकी नींव पर भारतीय गरिमापूर्ण आभा का भवन पुनर्स्थापित हो सके। शिक्षा को लेकर उनकी सोच सर्वआयामी एवं सूक्ष्म थी। उच्च शिक्षा में निहित समस्याओं के समाधान में स्वामी विवेकानंद के विचार इस प्रकार हैं–

अनुशासनहीनता एवं मूल्यहीनता की प्रवृत्ति

शिक्षा की विकट समस्या छात्र–अनुशासनहीनता एवं मूल्यहीनता की है। शिक्षा के क्षेत्र में यह दिन–प्रतिदिन भीमकाय रूप धारण करती चली जा रही है। हड़तालें और प्रदर्शन, हिंसात्मक व्यवहार, कक्षाओं और परीक्षाओं का बहिष्कार, मुठभेड़, आंदोलन, रैंगिंग आदि के रूप में छात्र–अनुशासनहीनता प्रायः प्रत्येक शिक्षा संस्थानों में आज आम बात हो गई है। उच्छृंखल व्यवहार और स्वाधिकारों का दुरुपयोग आदि प्रतिदिन देखे व सुने जा सकते हैं। इस समस्या का समाधान स्वामीजी के शिक्षा के उद्देश्य की व्यापक अवधारणा में निहित है। आज शिक्षा का उद्देश्य ही छात्रों को स्पष्ट नहीं है। वे मात्र डिग्री धारण करना, भौतिक संसाधनों की प्राप्ति का माध्यम शिक्षा को मानने जैसे संकीर्ण उद्देश्यों को लेकर ही शिक्षण संस्थानों में प्रवेश लेते हैं और इस प्रारंभिक सोच से ही अपने लक्ष्य से विमुख हो जाते हैं। स्वामी विवेकानंद शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य आत्मसत्ता की अभिव्यक्ति में निहित मानते हैं। स्वामीजी के अनुसार हमारी अंर्तआत्मा की सर्वोच्च अभीप्सा यही है कि उसे कुछ ऐसा प्राप्त हो जाए जिसका परिवर्तन नहीं होता। यह अपरिवर्तनीय उद्देश्य स्वयं में निहित ज्ञान को प्राप्त करना है। स्वामी विवेकानंद कहते हैं–''शिक्षा मनुष्य के भीतर निहित पूर्णता का विकास है'' (पण्ड्या, 1995, पृ. 122)। उनके अनुसार जब तक मनुष्य के भीतर अधूरापन है तब तक जीवन की रिक्तता उसे अपूर्ण व उच्छृंखल बनाए रखती है। ऐसे में छात्र उन लक्ष्यों को पाने के लिये लालायित रहते हैं जो स्वयं में निम्नस्तरीय एवं उथले हैं; इसीलिये उनकी अंतर्रात्मा एवं बुद्धि सदा अतृप्त बनी रहती है। पूर्णता की उपलब्धि ही जीवन का सर्वोच्च मूल्य है। मूल्य परक शिक्षा का उद्देश्य आचरण में पवित्रता लाकर इसी पूर्णता का उपलब्ध कराना है। स्वामीजी के अनुसार लौकिक तथा आध्यात्मिक सभी ज्ञान मनुष्य के मन व आत्मा में पहले से ही विद्यमान है। इस पर पड़े आवरण को उतार देना ही शिक्षा है। जब तक अंतः के आलोक में जागरण नहीं होता तब तक कोई भी ज्योति अभय नहीं दे सकती (पण्ड्या,

1995, पृ. 122)। यह आलोक ही छात्रों को अनुशासित कर पाने में सक्षम है। जब तक वे बाहरी जाल–जंजाल में भटकते रहेंगे तब तक स्वयं को संयमित कर पाना संभव नहीं। विद्यार्थियों को स्वामी जी के निर्देशानुसार भीतर की अपूर्णताओं की पूर्ति के माध्यम के रूप में शिक्षा को ग्रहण करना होगा, तभी वे अपने व्यवहार व जीवन को दिशा दे सकेंगे एवं शिक्षा के मूल्यों को जीवन में सार्थक कर पायेंगे।

शिक्षा का निम्न स्तर

शिक्षा के बहुत बड़े क्षेत्र में गुणवत्ता, हमारी वर्तमान आवश्यकताओं और भावी अपेक्षाओं के संदर्भ में अपर्याप्त हैं तथा विकसित देशों की तुलना में हमारा स्तर गिरा हुआ है। अयंगर ने लिखा है कि ''हमारे ज्ञान व शिक्षा का स्तर तीव्र गति से नीचे की ओर जा रहा है (मुखर्जी, 1962, पृ. 23)। वस्तुतः जब कोई स्तर एक बार गिरना आरम्भ हो जाता है तब फिर उसका अपने पुराने स्तर पर पहुँचना दुष्कर हो जाता है। डॉ. मुकर्जी ने लिखा है–''शिक्षा का स्तर एक बार गिर जाने पर फिर ऊँचा नहीं उठता है'' (मुखर्जी, 1962, पृ. 23)। इस गिरावट का प्रमुख कारण शिक्षा एवं शिक्षा पद्धति का स्तर बौद्धिक शुष्क एवं हृदय विहीन हो जाना है। आज की शिक्षा पद्धति उस विदेशी आधार पर खड़ी है जहाँ विचारों की मौलिकता एवं हृदय की संवेदनशीलता का नितांत अभाव है। स्वामी विवेकानंद ने स्पष्ट कहा है कि–''विदेशी पद्धति की ये शिक्षण संस्थाएँ तो थोड़े मूल्य पर उपयोगी गुलाम पैदा करने के कारखाने हैं, अर्थात् इन कारखानों से मुंशी, डाकबाबू, तारबाबू आदि ही पैदा होते हैं (विवेकानंद साहित्य, खण्ड–1, पृ. 310–11)। भारत के विकासात्मक अवरोध का मुख्य कारण यही है कि देश की सम्पूर्ण शिक्षा–बुद्धि, राज शासन और दंभ के बल से मुट्ठी भर लोगों के एकाधिकार में रखी गई है (विवेकानंद साहित्य, खण्ड–1, पृ. 310–11)। अतः शिक्षा के स्तर को उर्ध्वगामी बनाने के लिये उसे सर्वप्रथम बुद्धि के स्थान से हृदय पर, भौतिक के स्थान से आत्मिकी पर स्थापित करना होगा। स्वामीजी के अनुसार हृदय की भाषा गहरी है, उसकी पहुँच विस्तृत है और प्रभाव श्रेष्ठतम् है। उनके शब्दों में –'यदि तुम हृदय से अनुभव करते हो, तो एक भी पुस्तक न पढ़ सकने पर, कोई भाषा न जानने पर भी तुम ठीक रास्ते पर चल रहे हो (विवेकानंद साहित्य, खण्ड–1, पृ. 412)। हृदय हमें उस उच्चतम राज्य में ले जाता है जहाँ बुद्धि कभी पहुँच नहीं सकती। वह बुद्धि से भी परे वहाँ पहुँचता है जिसे अंतःप्रेरणा कहते हैं (विवेकानंद साहित्य, खण्ड–1, पृ. 412)। अतः हृदय का ही अनुसरण करना चाहिये क्योंकि हृदय में से ईश्वर बोलता है। यहाँ हृदय की स्थापना से स्वामीजी का तात्पर्य दो रूपों में परिलक्षित होता है– प्रथमतः शिक्षा के स्तर को मानवीय स्वभाव के अनुकूल ढालकर व्यवहारिकता प्रदान करना तथा द्वितीय शिक्षा में संवेदना के आधार पर ग्रहणशीलता का होना।

दोषपूर्ण पाठ्यक्रम एवं परीक्षाप्रणाली

अधिकांश शिक्षासंस्थानों में ऐसा पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है जो वर्षों पुराना है और समय से बहुत पीछे है। विद्यार्थी द्वारा किये गये सम्पूर्ण कार्य का मूल्यांकन इसी पाठ्यक्रम पर आधारित एक बाह्य परीक्षा द्वारा किया जाता है। ऐसे में विद्यार्थी बिना सोचे समझे विषय सामग्री कण्ठस्थ कर परीक्षा उत्तीर्ण कर लेता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम व परीक्षा प्रणाली विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास एवं वैचारिक स्वातंत्र्य को आधार नहीं देते, फलस्वरूप विद्यार्थी कुंठित, संकीर्ण एवं बुद्धिवादी प्रकृति के व्यक्तित्व के रूप में उभरकर आता है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार पाठ्यसामग्री का विषय भारतीय शास्त्र व उपनिषदों पर आधृत होने पर शिक्षा का स्तर उत्कृष्ट हो सकता है। स्वामी जी के अनुसार हमें दुर्बल करने के लिये हजारों विषय हैं और हमें आज शक्ति की आवश्यकता है। वे कहते हैं–''उपनिषद् शक्ति की विशाल खान हैं, उनमें ऐसी प्रचुर शक्ति विद्यमान है कि वे समस्त संसार को तेजस्वी कर सकते हैं। वे तो समस्त जातियों, मतों, सम्प्रदायों के दुर्बल, दुःखी और पददलित लोगों को उच्च स्वर से पुकारकर स्वयं अपने पैरों पर खड़े होने और मुक्त हो जाने के लिये कहते हैं'' (विवेकानंद साहित्य, खण्ड–1, पृ. 238)। उपनिषदों एवं योगशास्त्रों को वे शिक्षा का ऐसा असीम माध्यम मानते हैं जो सदैव उत्कर्ष, बल, आत्मविश्वास व ईश्वरविश्वास का संदेश देते हैं। उनमें निहित आध्यात्मिक उपदेश को ही स्वामीजी शिक्षा का वास्तविक स्त्रोत मानते हैं–''केवल आध्यात्मिक ज्ञान ही ऐसा है जो हमारे दुःखों को सदा के लिये नष्ट कर सकता है, अन्य किसी प्रकार के ज्ञान से, आवश्यकताओं की पूर्ति केवल अल्प समय के लिये ही होती है'' (विवेकानंद साहित्य, खण्ड–1, पृ. 28)। स्थायी ज्ञान का एकमात्र माध्यम भारतीय धर्मग्रंथों में निहित आध्यात्मिक स्त्रोत ही हैं। अपने इसी आध्यात्मिक स्रोत से जो के प्राचीन काल में हमारी शिक्षा व्यवस्था का केन्द्र था, वर्तमान शिक्षा को जोड़ने की महती आवश्यकता है।

निर्देशन–परामर्श तथा शिक्षक–शिक्षण का अभाव

वर्तमान शिक्षण संस्थाओं में निर्देशन एवं परामर्श–सेवाओं का प्रायः पूर्ण अभाव है। विद्यार्थी अपनी स्वयं की इच्छा से, अपने अभिभावकों के दबाव से या किसी और को देखकर पाठ्य–विषयों का चयन करते हैं। इस प्रकार का रूचि के अनुकूल चयन न होने पर या उस पर अधिकार प्राप्त करने की क्षमता न होने पर विद्यार्थी के समक्ष संकट उपस्थित कर देता है। ऐसे में अधिकांशतः उसे मार्गदर्शन देने वाला कोई नहीं होता। स्वामी विवेकानंद इस समस्या का समाधान अंतर्जगत के आलोक में खोजने का निर्देश देते हैं। वे ऐसी शिक्षा चाहते हैं जिसके ज्ञान से अन्य समस्त वस्तुएँ ज्ञात हो जाती हैं (मुण्डकोपनिषद– 1/1/3)। वास्तविक परामर्श के लिये व्यक्ति को अंतर्जगत में

अनुसंधान की आवश्यकता होती है। यथार्थ ज्ञान का अनुभव मनुष्य की अंतर्रात्मा ही है (ब्रह्मवर्चस, 2002, पृ. 13)। यही वह नित्य विषय है जिसे विद्यार्थी को आत्मसात करना चाहिये। स्वामीजी के अनुसार जीवन के प्रश्नों का यथोचित समाधान बाह्य जगत् की किसी भी खोज में नहीं मिल सकता। सत्य की खोज करने के लिये अपने मन का विश्लेषण करना पड़ेगा (विवेकानंद साहित्य, खण्ड–1, पृ. 252)। स्वामी विवेकानंद विद्यार्थी को परामर्श व निर्देशन के लिये किसी बाह्य प्रयोगशाला के उपयोग का संदेश न देकर शिक्षा के उद्देश्य को आंतरिक जगत् की ओर प्रवाहित करते हैं। इस हेतु आवश्यकता इस बात की है कि भीतर की चिन्मय ज्योति को खोजा जाए ताकि वास्तविक ज्ञान का उदय हो सके। स्वामी जी के अनुसार इस प्रकार के परामर्श में प्रशिक्षित व्यक्ति ही स्वयं को एक शुद्ध नित्यता, आत्मनिर्भरता, सार्वभौमिकता अथवा विशेष व्यक्तित्व के रूप में जान सकता है। शिक्षा प्राप्ति के लिये स्वामी विवेकानंद गुरु, गुरुगृह एवं गुरु व शिष्य की योग्यता, पात्रता को अनिवार्य मानते थे। उनके विचार से –''शिक्षा का अर्थ है–'गुरुगृह–वास'! शिक्षक अथवा गुरु के व्यक्तिगत सम्पर्क के बिना कोई शिक्षा नहीं हो सकती'' (विवेकानंद साहित्य, खण्ड–5, पृ. 224)।

स्वामीजी शिष्य को बाल्यावस्था से ऐसे व्यक्ति के साथ रहने पर बल देते थे जिनका चरित्र उज्जवल व ज्वाजल्यमान अग्नि के समान हो जिससे जीवन की उच्चतम शिक्षा का सजीव आदर्श शिष्य के सामने रहे–''हमारे देश में ज्ञान का दान सदा त्यागी पुरुषों द्वारा ही होता आया है। शिक्षा का भार उन्हीं के कंधों पर पुनः होना चाहिये'' (विवेकानंद साहित्य, खण्ड–5, पृ. 369)। गुरु व शिष्य के लिये स्वामीजी कुछ गुणों को अनिवार्य मानते थे। इनके लिये कुछ आवश्यक नियम हैं (विवेकानंद साहित्य, खण्ड–4, पृ. 24)। शिष्य के लिये यह आवश्यक है कि उसमें पवित्रता, सच्ची ज्ञानपिपासा और अध्यवसाय होना चाहिये (विवेकानंद साहित्य, खण्ड–4, पृ.20)। तथा गुरु शास्त्रों का मर्मज्ञ, निष्पाप व धन, नाम, यश आदि स्वार्थ सिद्धि से परे होना चाहिये (विवेकानंद साहित्य, खण्ड–4, पृ. 21–22)। इस प्रकार यदि गुरु व शिष्य परस्पर सहानुभूति, विश्वास व श्रेष्ठता की साझेदारी करें तो वह शिक्षा का सर्वोत्तम स्त्रोत है। स्वयं को सही–सही जान लेना ही शिक्षा का सार है। सारा निर्देशन एवं परामर्श इसी लक्ष्य की ओर ले जाने के लिए होना चाहिये।

निष्कर्ष

वर्तमान शिक्षा की दिशाहीनता एवं भटकाव से जो समस्याएँ उभरकर सामने आयी है, उनका समाधान करना, साथ ही मूल्य शिक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण पक्ष को भी बढ़ावा देना आज शिक्षा जगत् की बड़ी चुनौती है। ऐसे में यह अध्ययन स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन के माध्यम से वर्तमान शिक्षा समस्याओं का विश्लेषण करते हुये उनका सार्थक समाधान प्रस्तुत करता है, साथ ही मूल्य शिक्षा के सन्दर्भ में स्वामीजी के विचारों के माध्यम से वेद, उपनिषद् आदि में प्रवर्तित शिक्षा के उच्चतम एवं वास्तविक अर्थ को स्पष्ट करते हुये मूल्य शिक्षा के लिए ठोस आधार प्रदान करता है। इस अध्ययन में स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन के रूप में एक सर्वथा नई दृष्टि मौजूद है जो वर्तमान शिक्षा समस्याओं को समझने, शिक्षा के यथार्थ लक्ष्य को जानने तथा मनुष्य जीवन में शिक्षा के महत्त्व को आत्मसात कर लेने की स्पष्ट विवेचना करती है।

प्रिज्मा झरे, शोधार्थी, शिक्षा विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड, भारत।

संदर्भ सूची

अल्तेकर, अनन्त सदाशिव (2014). *प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति।* नई दिल्ली– हिन्दी बुक सैंटर।

अद्वैत आश्रम (1989). *विवेकानंद साहित्य (खण्ड–1)।* कलकत्ता– अद्वैत आश्रम प्रकाशन।

अद्वैत आश्रम (1989). *विवेकानंद साहित्य (खण्ड–3)।* कलकत्ता– अद्वैत आश्रम प्रकाशन।

अद्वैत आश्रम (1989). *विवेकानंद साहित्य (खण्ड–4)।* कलकत्ता– अद्वैत आश्रम प्रकाशन।

अद्वैत आश्रम (1989). *विवेकानंद साहित्य (खण्ड–5)।* कलकत्ता– अद्वैत आश्रम प्रकाशन।

तोमर, लज्जाराम (2013). *प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति।* नई दिल्ली– सुरूचि प्रकाशन।

पण्ड्या, प्रणव (1995). *जीवन पथ के प्रदीप।* हरिद्वार– श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट।

पण्ड्या, प्रणव (2004). शिक्षा में मूल्यहीनता– एक यक्ष प्रश्न। *अखण्ड ज्योति, 68, 3,* 15.

पाण्डे, रामशकल (2008). *शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि।* आगरा– अग्रवाल पब्लिकेशनस।

मुखर्जी, एस. एन. (1962). *एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ़ एजुकेशन इन इंडिया (प्रथम संस्करण)।* गुजरात– आचार्य बुक डिपो।

ब्रह्मवर्चस (2002). *आत्मा वा अरे ज्ञातव्य (प्रथम संस्करण)।* हरिद्वार– श्री वदमाता गायत्री ट्रस्ट।

कास्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवनीति। **(मुण्डकोपनिषद 1/1/3)**